Chapter उनसठ

नरकासुर का वध

इस अध्याय में बताया गया है कि भगवान् कृष्ण ने देवी पृथ्वी के पुत्र नरकासुर को किस तरह मारा और असुर के द्वारा अपहरण की गईं हजारों युवतियों से विवाह किया। इसमें यह भी बताया गया है कि भगवान् ने किस प्रकार स्वर्ग से पारिजात वृक्ष चुराया और अपने हर महल में किस तरह सामान्य गृहस्थ जैसा व्यवहार किया।

जब नरकासुर ने भगवान् वरुण का छाता, माता अदिति के कुण्डल तथा देवताओं का मणिपर्वत नामक क्रीड़ा क्षेत्र चुरा लिये तो इन्द्र ने द्वारका जाकर भगवान् कृष्ण से उस असुर के अतिक्रमण का हाल कह सुनाया। अत: भगवान् कृष्ण सत्यभामा सहित अपने वाहन गरुड़ पर सवार हुए और नरकासुर की राजधानी जा पहुँचे। नगर के बाहर एक खेत में भगवान् ने अपने चक्र से मुर नामक असुर का सिर काट लिया। इसके बाद वे मुर के सात पुत्रों से लड़े और उन्हें यम-धाम पहुँचाया। तत्पश्चात् नरकासुर स्वयं हाथी पर सवार होकर युद्धभूमि में आया। उसने श्रीकृष्ण पर अपना शक्ति नामक भाला छोड़ा किन्तु यह हथियार बेकार हो गया और भगवान् ने असुर की सारी सेना को क्षत-विक्षत कर डाला। अन्त में कृष्ण ने अपने तेज धार वाले चक्र से नरकासुर का सिर काट लिया।

तब देवी पृथ्वी भगवान् कृष्ण के पास पहुँची और उन्हें नरकासुर द्वारा चुराई गई विविध वस्तुएँ प्रदान कीं। उन्होंने भगवान् की स्तुति की और नरकासुर के भयभीत पुत्र को लाकर भगवान् के चरणकमलों में डाल दिया। उस असुर-पुत्र को सान्त्वना देकर कृष्ण नरकासुर के महल में घुसे जहाँ उन्हें सोलह हजार एक सौ युवतियाँ मिलीं। ज्योंही उन्होंने कृष्ण को देखा, उन सबों ने उन्हें ही अपने पति रूप में स्वीकार करने का निर्णय लिया। भगवान् ने उन्हें प्रचुर कोष के साथ द्वारका भेज दिया और तब वे सत्यभामा के साथ इन्द्र-धाम गये। वहाँ उन्होंने अदिति के कुंडल लौटाये और इन्द्र तथा इन्द्र-पत्नी शची देवी ने उनकी पूजा की। सत्यभामा के अनुरोध पर कृष्ण ने स्वर्गिक पारिजात वृक्ष उखाड़ लिया और उसे गरुड़ की पीठ पर रख लिया। फिर इस वृक्ष को ले जाने का विरोध कर रहे इन्द्र तथा अन्य देवताओं को हराकर कृष्ण सत्यभामा समेत द्वारका लौट आये जहाँ उन्होंने सत्यभामा के महल के निकट उस वृक्ष को एक बगीचे में रोप दिया।

इन्द्र मूलत: कृष्ण की स्तुति करने और उनसे नरकासुर का वध करने की याचना करने आया था किन्तु जब उसका काम पूरा हो गया तो वह भगवान् से झगड़ पड़ा। देवताओं में क्रुद्ध होने की प्रवृत्ति है क्योंकि वे अपने ऐश्वर्य के मद से उन्मत्त हो उठते हैं।

अच्युत भगवान् ने अपने सोलह हजार एक सौ पृथक्-पृथक् रूप धारण किये और उनके अलग-अलग भवनों में सोलह हजार एक सौ युवतियों से विवाह किया। वे अपनी अनेक पत्नियों से विभिन्न प्रकार की सेवाएँ कराते हुए सामान्य पुरुष जैसा गृहस्थ जीवन बिताने लगे।

श्रीराजोवाच यथा हतो भगवता भौमो येने च ता: स्त्रिय: ।
निरुद्धा एतदाचक्ष्व विक्रमं शार्ङ्गधन्वन: ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा (परीक्षित) ने कहा; यथा—कैसे; हत:—मारा गया; भगवता—भगवान् द्वारा; भौम:—नरकासुर, भूमि या पृथ्वीदेवी का पुत्र; येन—जिसके द्वारा; च—तथा; ता:—वे; स्त्रिय:—स्त्रियाँ; निरुद्धा:—बन्दी; एतत्—यह; आचक्ष्व—कहिये; विक्रमम्—शौर्य; शार्ङ्ग-धन्वन:—शार्ङ्ग धनुष के स्वामी कृष्ण का।

[राजा परीक्षित ने कहा]: अनेक स्त्रियों का अपहरण करने वाला भौमासुर किस तरह भगवान् द्वारा मारा गया? कृपा करके भगवान् शार्ङ्गधन्वा के इस शौर्य का वर्णन कीजिये।

श्रीशुक उवाच

इन्द्रेण हृतछत्रेण हृतकुण्डलबन्धुना ।
हृतामराद्रिस्थानेन ज्ञापितो भौमचेष्टितम् ।
सभार्यो गरुडारूढः प्राग्ज्योतिषपुरं ययौ ॥ २ ॥
गिरिदुर्गैः शस्त्रदुर्गैर्जलाग्न्यनिलदुर्गमम् ।
मुरपाशायुतैर्घोरैर्दृढैः सर्वत आवृतम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इन्द्रेण—इन्द्र द्वारा; हृत-छत्रेण—जिससे (वरुण का) छाता चुरा लिया गया; हृत-कुण्डल—कुण्डलों की चोरी; बन्धुना—उसके सम्बन्धियों (माता अदिति) के; हृत—तथा चोरी; अमर-अद्रि—देवताओं के पर्वत (मन्दर) पर; स्थानेन—विशेष स्थान (पर्वत की चोटी पर बने क्रीड़ास्थल, मणिपर्वत) पर; ज्ञापितः—सूचित किया; भौम-चेष्टितम्—भौम के कार्यकलापों का; स—सहित; भार्यः—अपनी पत्नी (सत्यभामा); गरुड-आरूढः—गरुड़ पर सवार होकर; प्राग्-ज्योतिष-पुरम्—भौम की राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर (आसाम में स्थित-वर्तमान तेजपुर); ययौ—गया; गिरि—पर्वत; दुर्गैः—किलेबन्दी द्वारा; शस्त्र—हथियारों से युक्त; दुर्गैः—किलेबन्दी द्वारा; जल—जल; अग्नि—आग; अनिल—तथा वायु के; दुर्गमम्—किलेबन्दी से दुर्गम बनाया गया; मुर-पाश—केबलों (तारों) की घातक दीवाल से; अयुतैः—दसियों हजार; घोरैः—भयावना; दृढैः—तथा मजबूत; सर्वतः—सभी दिशाओं से; आवृतम्—घिरा हुआ।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब भौम ने इन्द्र की माता के कुंडलों के साथ साथ वरुण का छत्र तथा मन्दर पर्वत की चोटी पर स्थित देवताओं की क्रीड़ास्थली को चुरा लिया तो इन्द्र कृष्ण के पास गया और उन्हें इन दुष्कृत्यों की सूचना दी। तब भगवान् अपनी पत्नी सत्यभामा को साथ लेकर गरुड़ पर सवार होकर प्राग्ज्योतिषपुर के लिए रवाना हो गये जो चारों ओर से पर्वतों, बिना पुरुषों के चलाये जाने वाले हथियारों, जल, अग्नि तथा वायु से और मुर पाशतारों (फन्दों) के अवरोधों से घेरा हुआ था।

तात्पर्य : आचार्यों ने विभिन्न युक्तिसंगत विधियों के द्वारा व्याख्या की है कि भगवान् कृष्ण अपने साथ सत्यभामा को क्यों ले गये थे। श्रील श्रीधर स्वामी कहते हैं कि भगवान् अपनी साहसिक पत्नी को विशिष्ठ अनुभव करवाना चाहते थे इसीलिए वे इस असामान्य युद्ध-क्षेत्र में उन्हें ले गये। यही नहीं, कृष्ण ने एक बार भूमि, देवी पृथ्वी, को आशीर्वाद दिया था कि वे उसकी अनुमति के बिना उसके असुर-पुत्र का संहार नहीं करेंगे। चूँकि भूमि सत्यभामा की अंश है, अतः सत्यभामा उन्हें अत्यन्त दुष्ट भौमासुर से निपटने के लिए अधिकृत कर सकती थीं।

अन्तिम बात यह थी कि जब नारदमुनि रुक्मिणी के लिए दैवी पारिजात पुष्प लाये तो सत्यभामा का क्रोध जाग उठा था। अतः सत्यभामा को सान्त्वना देते हुए भगवान् ने उनसे वादा किया था, ''मैं तुम्हारे लिए इन फूलों का पूरे का पूरा वृक्ष ला दूँगा'' अतः उन्होंने अपने कार्यक्रम में इस स्वर्गिक वृक्ष के लाने को भी सम्मिलित कर लिया।

आज भी पत्नी समर्पित पति अपनी पत्नियों को खरीदारी के लिए बाजार में साथ ले जाते हैं अत: भगवान् कृष्ण उस स्वर्गिक वृक्ष को लाने के लिए सत्यभामा को स्वर्गलोक ले गये। साथ ही वे उन वस्तुओं को भी वापस लाने और उन्हें उनके असली मालिकों को लौटाने के लिए वहाँ गये थे जिन्हें भौमासुर चुरा ले गया था।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती लिखते हैं कि युद्ध में तेजी आने पर सत्यभामा स्वभावत: कृष्ण की सुरक्षा के प्रति व्यग्र हो जाएँगी और युद्ध के अन्त होने के लिए प्रार्थना करेंगी। इस तरह वे अपने ही अंश भूमि के पुत्र का वध करने के लिए कृष्ण को अनुमति दे देंगी।

गदया निर्बिभेदाद्रीन्शस्त्रदुर्गाणि सायकै: ।
चक्रेणाग्निं जलं वायुं मुरपाशांस्तथासिना ॥ ४॥

शब्दार्थ

गदया—अपनी गदा से; निर्बिभेद—तोड़ डाला; अद्रीन्—पर्वतों को; शस्त्र-दुर्गाणि—अवरोधक हथियार; सायकै:—अपने बाणों से; चक्रेण—अपने चक्र से; अग्निम्—अग्नि को; जलम्—जल को; वायुम्—तथा वायु को; मुर-पाशान्—तारों के फंदों के अवरोधों को; तथा—इसी तरह; असिना—अपनी तलवार से।

भगवान् ने अपनी गदा से चट्टानी किलेबन्दी को, अपने बाणों से हथियारों की नाकेबन्दी को, अपने चक्र से अग्नि, जल तथा वायु की किलेबन्दी को और अपनी तलवार से मुर पाश की तारों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

शङ्खनादेन यन्त्राणि हृदयानि मनस्विनाम् ।
प्राकारं गदया गुर्व्या निर्बिभेद गदाधर: ॥ ५॥

शब्दार्थ

शङ्ख—अपने शंख की; नादेन—ध्वनि से; यन्त्राणि—योग के तिलिस्मों को; हृदयानि—हृदयों को; मनस्विनाम्—बहादुरों के; प्राकारम्—परकोटे को; गदया—अपनी गदा से; गुर्व्या—भारी; निर्बिभेद—तोड़ डाला; गदाधर:—भगवान् कृष्ण ने।

तब गदाधर ने अपने शंख की ध्वनि से दुर्ग के जादुई तिलिस्मों को और उसी के साथ उसके वीर रक्षकों के हृदयों को ध्वस्त कर दिया। उन्होंने अपनी भारी गदा से किले के मिट्टी से बने परकोटे को ढहा दिया।

पाञ्चजन्यध्वनिं श्रुत्वा युगान्तशनिभीषणम् ।
मुर: शयान उत्तस्थौ दैत्य: पञ्चशिरा जलात् ॥ ६॥

शब्दार्थ

पाञ्चजन्य—कृष्ण के शंख की; ध्वनिम्—आवाज को; श्रुत्वा—सुनकर; युग—ब्रह्माण्ड के युग के; अन्त—अन्त में; अशनि—बिजली की (ध्वनि के समान); भीषणम्—दिल दहलाने वाली; मुरः—मुर; शयानः—सोया हुआ; उत्तस्थौ—उठ गया; दैत्यः—असुर; पञ्च-शिराः—पाँच सिरों वाला; जलात्—(किले के चारों ओर की खाईं के) जल में से।

जब पाँच सिरों वाले असुर मुर ने भगवान् कृष्ण के पांचजन्य शंख की ध्वनि सुनी, जो युग के अन्त में बिजली (वज्र) की कड़क की भाँति भयावनी थी तो नगर की खाई की तली में सोया हुआ वह असुर जग गया और पानी से बाहर निकल आया।

त्रिशूलमुद्यम्य सुदुर्निरीक्षणो
युगान्तसूर्यानलरोचिरुल्बणः ।
ग्रसंस्त्रिलोकीमिव पञ्चभिर्मुखै-
रभ्यद्रवत्तार्क्ष्यसुतं यथोरगः ॥ ७॥

शब्दार्थ

त्रि-शूलम्—अपना त्रिशूल; उद्यम्य—उठाकर; सु—अत्यन्त; दुर्निरीक्षणः—जिसकी ओर देख पाना कठिन था; युग-अन्त—युग के अन्त में; सूर्य—सूर्य; अनल—अग्नि (वत्); रोचिः—जिसका तेज; उल्बणः—भीषण; ग्रसन्—निगलते हुए; त्रि-लोकीम्—तीनों लोकों को; इव—मानो; पञ्चभिः—अपने पाँच; मुखैः—मुखों से; अभ्यद्रवत्—आक्रमण किया; ताक्ष्र्य-सुतम्—ताक्ष्र्य के पुत्र, गरुड़ पर; यथा—जिस तरह; उरगः—सर्प।

युगान्त के समय की सूर्य की अग्नि सदृश अन्धा बना देने वाले भयंकर तेज से चमकता हुआ, मुर अपने पाँचों मुखों से तीनों लोकों को निगलता-सा प्रतीत हो रहा था। उसने अपना त्रिशूल उठाया और ताक्ष्र्य-पुत्र गरुड़ पर वैसे ही टूट पड़ा जिस तरह आक्रमण करता हुआ सर्प।

आविध्य शूलं तरसा गरुत्मते
निरस्य वक्त्रैर्व्यनदत्स पञ्चभिः ।
स रोदसी सर्वदिशोऽम्बरं महा-
नापूरयन्नण्डकटाहमावृणोत् ॥ ८॥

शब्दार्थ

आविध्य—घुमाते हुए; शूलम्—अपना त्रिशूल; तरसा—बलपूर्वक; गरुत्मते—गरुड़ पर; निरस्य—फेंककर; वक्त्रैः—मुखों से; व्यनदत्—गर्जना की; सः—उसने; पञ्चभिः—पाँचो; सः—वह; रोदसी—पृथ्वी तथा आकाश; सर्व—सभी; दिशः—दिशाएँ; अम्बरम्—बाह्य आकाश; महान्—महान् (गर्जना); आपूरयन्—पूर्ण करते हुए; अण्द—ब्रह्माण्ड के अंडे जैसे आवरणों के; कटाहम्—कड़ाह को; आवृणोत्—ढक दिया।

मुर ने अपना त्रिशूल घुमाया और अपने पाँचों मुखों से दहाड़ते हुए उसे गरुड़ पर बड़ी उग्रता से फेंक दिया। यह ध्वनि पृथ्वी, आकाश, सभी दिशाओं तथा बाह्य अंतरिक्ष की सीमाओं में भर कर ब्रह्माण्ड की खोल से टकराकर प्रतिध्वनित होने लगी।

तदापतद्वै त्रिशिखं गरुत्मते
हरिः शराभ्यामभिनत्त्रिधोजसा ।
मुखेषु तं चापि शरैरताडयत्
तस्मै गदां सोऽपि रुषा व्यमुञ्चत ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तदा—तब; आपतत्—उड़ती हुई; वै—निस्सन्देह; त्रि-शिखम्—त्रिशूल; गरुत्मते—गरुड़ की ओर; हरिः—भगवान् कृष्ण ने; शराभ्याम्—दो बाणों से; अभिनत्—खंड कर दिया; त्रिधा—तीन भागों में; ओजसा—बलपूर्वक; मुखेषु—उसके मुखों पर; तम्—उसको, मुर को; च—तथा; अपि—भी; शरैः—बाणों से; अताडयत्—प्रहार किया; तस्मै—उस (कृष्ण) पर; गदाम्—अपनी गदा को; सः—उसने, मुर ने; अपि—तथा; रुषा—क्रोध में; व्यमुञ्चत—छोड़ा।

तब भगवान् हरि ने गरुड़ की ओर उड़ते हुए त्रिशूल पर दो बाणों से प्रहार किया और उसे तीन खण्डों में काट डाला। इसके बाद भगवान् ने मुर के मुखों पर कई बाण मारे और असुर ने भी क्रुद्ध होकर भगवान् पर अपनी गदा फेंकी।

तामापतन्तीं गदया गदां मृधे
गदाग्रजो निर्बिभिदे सहस्त्रधा ।
उद्यम्य बाहूनभिधावतोऽजितः
शिरांसि चक्रेण जहार लीलया ॥ १० ॥

शब्दार्थ

ताम्—उस; आपतन्तीम्—अपनी ओर आती हुई; गदया—अपनी गदा से; गदाम्—गदा को; मृधे—युद्धभूमि में; गद-अग्रजः—गद के बड़े भाई, कृष्ण ने; निर्बिभिदे—तोड़ डाला; सहस्त्रधा—हजारों टुकड़ों में; उद्यम्य—उठाकर; बाहून्—अपनी भुजाएँ; अभिधावतः—उसकी ओर दौड़ने वाले का; अजितः—अजेय कृष्ण; शिरांसि—सिरों को; चक्रेण—अपने चक्र से; जहार—अलग कर दिया; लीलया—आसानी से।

जब युद्धभूमि में मुर की गदा कृष्ण की ओर लपकी तो गदाग्रज ने अपनी गदा से उसे बीच में ही रोक दिया और उसे हजारों टुकड़ों में तोड़ डाला। तब मुर ने अपनी बाहें ऊपर उठा लीं और अजेय भगवान् की ओर दौड़ा जिन्होंने अपने चक्र से उसके सिरों को सरलता से काट गिराया।

व्यसुः पपाताम्भसि कृत्तशीर्षो
निकृत्तशृङ्गोऽद्रिरिवेन्द्रतेजसा ।
तस्यात्मजाः सप्त पितुर्वधातुराः
प्रतिक्रियामर्षजुषः समुद्यताः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

व्यसुः—प्राणविहीन; पपात—गिर पड़ा; अम्भसि—जल के भीतर; कृत्त—कटे हुए; शीर्षः—सिरों; निकृत्त—कटा हुआ; शृङ्गः—चोटी; अद्रिः—पर्वत; इव—मानो; इन्द्र—इन्द्र की; तेजसा—शक्ति से (उसके वज्र से); तस्य—उस (मुर) के; आत्म-

जाः—पुत्रगण; सप्त—सात; पितुः—अपने पिता के; वध—मारे जाने से; आतुराः—अत्यन्त दुखित; प्रतिक्रिया—बदले के लिए; अमर्ष—क्रोध; जुषः—भावना; समुद्यताः—सन्नद्ध।

प्राणविहीन मुर का सिरकटा शरीर पानी में उसी तरह गिर पड़ा जैसे कोई पर्वत जिसकी चोटी इन्द्र के वज्र की शक्ति से छिन्न हो गई हो। अपने पिता की मृत्यु से क्रुद्ध होकर असुर के सात पुत्र बदला लेने के लिए उद्यत हो गये।

ताम्रोऽन्तरिक्षः श्रवणो विभावसु-
वर्सुर्नभस्वानरुणश्च सप्तमः ।
पीठं पुरस्कृत्य चमूपतिं मृधे
भौमप्रयुक्ता निरगन्धृतायुधाः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

ताम्रः अन्तरिक्षः श्रवणः विभावसुः—ताम्र, अन्तरिक्ष, श्रवण तथा विभावसु; वसुः नभस्वान्—वसु तथा नभस्वान; अरुणः—अरुण; च—तथा; सप्तमः—सातवाँ; पीठम्—पीठ को; पुरः-कृत्य—आगे करके; चमू-पतिम्—अपने सेनापति को; मृधे—युद्धभूमि में; भौम—भौमासुर द्वारा; प्रयुक्ताः—नियुक्त; निरगन्—(किले से) बाहर निकल आये; धृत—धारण किये; आयुधाः—हथियार।

भौमासुर का आदेश पाकर ताम्र, अन्तरिक्ष, श्रवण, विभावसु, वसु, नभस्वान् तथा अरुण नामक सातों पुत्र अपने हथियार धारण किये पीठ नामक अपने सेनापति के पीछे पीछे युद्ध-क्षेत्र में आ गये।

प्रायुञ्जतासाद्य शरानसीन्गदाः
शक्त्यृष्टिशूलान्यजिते रुषोल्बणाः ।
तच्छस्त्रकूटं भगवान्स्वमार्गणै-
रमोघवीर्यस्तिलशश्चकर्त ह ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

प्रायुञ्जत—प्रयोग किया; आसाद्य—आक्रमण करके; शरान्—बाणों; असीन्—तलवारों; गदाः—गदाओं; शक्ति—भालों; ऋष्टि—ऋष्टि; शूलानि—तथा त्रिशूलों से; अजिते—अजित भगवान् कृष्ण पर; रुषा—क्रोधपूर्वक; उल्बणाः—भयानक; तत्—उनके; शस्त्र—हथियारों के; कूटम्—पर्वत को; भगवान्—भगवान् ने; स्व—अपने; मार्गणैः—बाणों से; अमोघ—अचूक; वीर्यः—जिनका पराक्रम; तिलशः—तिल जितने छोटे छोटे कणों में; चकर्त ह—काट डाला।

इन भयानक योद्धाओं ने क्रुद्ध होकर बाणों, तलवारों, गदाओं, भालों, ऋष्टियों तथा त्रिशूलों से अजेय भगवान् कृष्ण पर आक्रमण कर दिया किन्तु भगवान् ने अपनी अमोघ शक्ति से हथियारों के इस पर्वत को अपने बाणों से छोटे छोटे टुकड़ों में काट डाला।

तान्पीठमुख्याननयद्यमक्षयं

निकृत्तशीर्षोरुभुजाङ्घ्रिवर्मणः ।
स्वानीकपानच्युतचक्रसायकै-
स्तथा निरस्तान्नरको धरासुतः ।
निरीक्ष्य दुर्मर्षण आस्रवन्मदै-
र्गजैः पयोधिप्रभवैर्निराक्रमात् ॥ १४॥

शब्दार्थ

तान्—उन; पीठ-मुख्यान्—पीठ इत्यादि को; अनयत्—भेज दिया; यम—मृत्यु के स्वामी यम के; क्षयम्—धाम को; निकृत्त—कटे हुए; शीर्ष—सिर; ऊरु—जाँघें; भुज—बाँहें; अङ्घ्रि—पाँव; वर्मणः—तथा कवच; स्व—अपनी; अनीक—सेना के; पान्—नायक; अच्युत—भगवान् कृष्ण के; चक्र—चक्र; सायकैः—तथा बाणों से; तथा—इस प्रकार; निरस्तान्—हटाया गया; नरकः—भौम; धरा—पृथ्वीदेवी का; सुतः—पुत्र; निरीक्ष्य—देखकर; दुर्मर्षणः—सहन करने में अक्षम; आस्रवत्—चू रहे थे; मदैः—उन्मत्त हाथियों के गण्डस्थल से निकलने वाला चिपचिपा द्रव; गजैः—हाथियों के साथ; पयः-धि—क्षीर सागर से; प्रभवैः—उत्पन्न; निराक्रमात्—वह बाहर आया।

भगवान् ने पीठ इत्यादि प्रतिद्वन्द्वियों के सिर, जाँघें, बाँहें, पाँव तथा कवच काट डाले और उन सबों को यमराज के लोक भेज दिया। जब पृथ्वी-पुत्र नरकासुर ने अपने सेना-नायकों का यह हाल देखा तो उसका क्रोध आपे में न रह सका। अतः वह क्षीर सागर से उत्पन्न हाथियों के साथ, जो उन्मत्तता के कारण अपने गण्डस्थल से मद चूआ रहे थे, अपने दुर्ग से बाहर आया।

दृष्ट्वा सभार्यं गरुडोपरि स्थितं
सूर्योपरिष्टात्सतडिद्घनं यथा ।
कृष्णं स तस्मै व्यसृजच्छतघ्नीं
योधाश्च सर्वे युगपच्च विव्यधुः ॥ १५॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; स-भार्यम्—अपनी पत्नी के साथ; गरुड-उपरि—गरुड़ के ऊपर; स्थितम्—आसीन; सूर्य—सूर्य से; उपरिष्टात्—ऊँचा; स-तडित्—बिजली से युक्त; घनम्—बादल को; यथा—जिस तरह; कृष्णम्—भगवान् कृष्ण को; सः—उसने, भौम ने; तस्मै—उस पर; व्यसृजत्—छोड़ा; शत-घ्नीम्—शतघ्नी (भाले का नाम); योधाः—उसके सैनिकों ने; च—तथा; सर्वे—सभी; युगपत्—एक ही साथ; च—तथा; विव्यधुः—आक्रमण कर दिया।

गरुड़ पर आसीन भगवान् कृष्ण और उनकी पत्नी सूर्य को ढकने वाले बिजली से युक्त बादल जैसे प्रतीत हो रहे थे। भगवान् को देखकर भौम ने उन पर अपना शतघ्नी हथियार छोड़ा। तत्पश्चात् भौम के सारे सैनिकों ने एकसाथ अपने अपने हथियारों से आक्रमण कर दिया।

तद्भौमसैन्यं भगवानगदाग्रजो
विचित्रवाजैर्निशितैः शिलीमुखैः ।
निकृत्तबाहूरुशिरोध्रविग्रहं
चकार तर्ह्येव हताश्वकुञ्जरम् ॥ १६॥

शब्दार्थ

तत्—उस; भौम-सैन्यम्—भौमासुर की सेना को; भगवान्—भगवान्; गदाग्रजः—कृष्ण ने; विचित्र—नाना प्रकार के; वाजैः—पंखों वाले; निशितैः—नुकीले; शिलीमुखैः—बाणों से; निकृत्त—काट दिया; बाहु—बाँहें; ऊरु—जाँघें; शिरः-ध्र—तथा गर्दन; विग्रहम्—शरीरों को; चकार—बनाया; तर्हि एव—उसी क्षण; हत—मार डाला; अश्व—घोड़ों; कुञ्जरम्—तथा हाथियों को।

उस क्षण भगवान् गदाग्रज ने अपने तीक्ष्ण बाण भौमासुर की सेना पर छोड़े। नाना प्रकार के पंखों से युक्त इन बाणों ने उस सेना को शरीरों के ढेर में बदल दिया जिनकी बाँहें, जाँघें तथा गर्दनें कटी थीं। इसी तरह कृष्ण ने विपक्षी घोड़ों तथा हाथियों को मार डाला।

यानि योधैः प्रयुक्तानि शस्त्रास्त्राणि कुरूद्वह ।
हरिस्तान्यच्छिनत्तीक्ष्णैः शरैरेकैकशस्त्रीभिः ॥ १७॥
उह्यमानः सुपर्णेन पक्षाभ्यां निघ्नता गजान् ।
गुरुत्मता हन्यमानास्तुण्डपक्षनखेर्गजाः ॥ १८॥
पुरमेवाविशन्नार्ता नरको युध्ययुध्यत ॥ १९॥

शब्दार्थ

यानि—वे जो; योधैः—योद्धाओं द्वारा; प्रयुक्तानि—प्रयुक्त; शस्त्र—काटने वाले हथियार; अस्त्राणि—तथा फेंककर चलाये जाने वाले हथियार; कुरु-उद्वह—हे कुरुओं के वीर (राजा परीक्षित); हरिः—भगवान् कृष्ण ने; तानि—उनको; अच्छिनत्—खण्ड खण्ड कर दिया; तीक्ष्णैः—नुकीले; शरैः—बाणों से; एक-एकशः—एक एक करके; त्रिभिः—तीन; उह्यमानः—ले जाये गये; सु-पर्णेन—बड़े बड़े पंखो वाले (गरुड़) द्वारा; पक्षाभ्याम्—दोनों पंखों से; निघ्नता—प्रहार करता; गजान्—हाथियों को; गुरुत्मता—गरुड़ द्वारा; हन्यमानाः—मारा जाकर; तुण्ड—चोंच; पक्ष—पंखों; नखैः—तथा पंजों से; गजाः—हाथी; पुरम्—नगर में; एव—निस्सन्देह; आविशन्—फिर से भीतर जाकर; आर्ताः—दुखी; नरकः—नरक (भौम); युधि—युद्ध में; अयुध्यत—लड़ता रहा।

हे कुरुवीर, तब भगवान् हरि ने उन सारे अस्त्रों तथा शस्त्रों को मार गिराया जिन्हें शत्रु-सैनिकों ने उन पर फेंका था और हर एक को तीन तेज बाणों से नष्ट कर डाला। इस बीच, भगवान् को उठाकर ले जाते हुए गरुड़ ने अपने पंखों से शत्रु के हाथियों पर प्रहार किया। ये हाथी गरुड़ के पंखों, चोंच तथा पंजों से प्रताड़ित होने से भाग कर नगर के भीतर जा घुसे जिससे कृष्ण का सामना करने के लिए युद्धभूमि में केवल नरकासुर बच रहा।

दृष्ट्वा विद्रावितं सैन्यं गरुडेनार्दितं स्वकं ।
तं भौमः प्राहरच्छक्त्या वज्रः प्रतिहतो यतः ।
नाकम्पत तया विद्धो मालाहत इव द्विपः ॥ २०॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; विद्रावितम्—भगाई हुई; सैन्यम्—सेना के; गरुडेन—गरुड़ द्वारा; अर्दितम्—तंग की गई; स्वकम्—अपनी; तम्—उस पर, गरुड़ पर; भौमः—भौमासुर ने; प्राहरत्—प्रहार किया; शक्त्या—अपने भाले से; वज्रः—(इन्द्र का) वज्र;

प्रतिहतः—उलट कर प्रहार किया गया; यतः—जिससे; न अकम्पत—वह (गरुड़) हिला नहीं; तया—उससे; विद्धः—प्रहार किया गया; माला—फूलों की माला से; आहतः—मारा गया; इव—सदृश; द्विपः—हाथी।

जब भौम ने देखा कि गरुड़ द्वारा उसकी सेना खदेड़ी तथा सतायी जा रही है, तो उसने गरुड़ पर अपने उस भाले से आक्रमण किया जिससे उसने एक बार इन्द्र के वज्र को परास्त किया था। किन्तु उस शक्तिशाली हथियार से प्रहार किये जाने पर भी गरुड़ तिलमिलाये नहीं। निस्सन्देहवे फूलों की माला से प्रहार किए जाने वाले हाथी के समान थे।

शूलं भौमोऽच्युतं हन्तुमाददे वितथोद्यमः ।
तद्विसर्गात्पूर्वमेव नरकस्य शिरो हरिः ।
अपाहरद्गजस्थस्य चक्रेण क्षुरनेमिना ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

शूलम्—त्रिशूल को; भौमः—भौम ने; अच्युतम्—भगवान् कृष्ण को; हन्तुम्—मारने के लिए; आददे—ग्रहण किया; वितथ—व्यग्र; उद्यमः—प्रयास; तत्—उसके; विसर्गात्—छोड़ने से; पूर्वम्—पहले; एव—भी; नरकस्य—भौम का; शिरः—सिर; हरिः—भगवान् कृष्ण ने; अपाहरत्—काट दिया; गज—हाथी पर; स्थस्य—बैठे हुए; चक्रेण—चक्र से; क्षुर—छुरे सी; नेमिना—धार वाले।

तब अपने सारे प्रयासों में विफल भौम ने भगवान् कृष्ण को मारने के लिए अपना त्रिशूल उठाया। किन्तु इसके पहले कि वह उसे चलाये, भगवान् ने अपने तेज धार वाले चक्र से हाथी के ऊपर बैठे हुए उस असुर के सिर को काट डाला।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार ज्योंही भौम ने अपना अजेय त्रिशूल उठाया, भगवान् के साथ गरुड़ पर आसीन सत्यभामा ने कृष्ण से कहा, ''उसका तत्क्षण वध कीजिये'' और कृष्ण ने वैसा ही किया।

सकुण्डलं चारुकिरीटभूषणं
बभौ पृथिव्यां पतितम्समुज्ज्वलम् ।
ह हेति साध्वित्यृषयः सुरेश्वरा
माल्यैर्मुकुन्दं विकिरन्त ईदिरे ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

स—सहित; कुण्डलम्—कुण्डल; चारु—सुन्दर; किरीट—मुकुट से; भूषणम्—सुशोभित; बभौ—चमकने लगा; पृथिव्याम्—पृथ्वी पर; पतितम्—गिरा हुआ; समुज्ज्वलम्—चमकीला; हा हा इति—हाय हाय; साधु इति—बहुत अच्छा; ऋषयः—ऋषियों ने; सुर-ईश्वरः—तथा प्रमुख देवताओं ने; माल्यैः—फूल की मालाओं से; मुकुन्दम्—भगवान् कृष्ण की; विकिरन्तः—बिखरते हुए; ईडिरे—पूजा की।

भूमि पर गिरे हुए भौमासुर का सिर तेजी से चमक रहा था क्योंकि यह कुण्डलों तथा

आकर्षक मुकुट से सज्जित था। ज्यों ही ''हाय हाय'' तथा ''बहुत अच्छा हुआ'' के क्रन्दन उठने लगे, त्योंही ऋषियों तथा प्रमुख देवताओं ने फूल-मालाओं की वर्षा करते हुए भगवान् मुकुन्द की पूजा की।

ततश्च भूः कृष्णमुपेत्य कुण्डले
प्रतप्तजाम्बूनदरत्नभास्वरे ।
सवैजयन्त्या वनमालयार्पयत्
प्राचेतसं छत्रमथो महामणिम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; च—तथा; भूः—भूमिदेवी; कृष्णम्—भगवान् कृष्ण के; उपेत्य—पास आकर; कुण्डले—दोनों कुण्डल (जो अदिति के थे); प्रतप्त—चमकीले; जाम्बूनद—सोना; रत्न—रत्नों से; भास्वरे—चमकते हुए; स—सहित; वैजयन्त्या—वैजयन्ती नामक; वन-मालया—तथा फूलों की माला से; अर्पयत्—भेंट किया; प्राचेतसम्—वरुण का; छत्रम्—छाता; अथ उ—तत्पश्चात; महा-मणिम्—मन्दर पर्वत की चोटी, मणिपर्वत।

तब भूमिदेवी भगवान् कृष्ण के पास आईं और भगवान् को अदिति के कुण्डल भेंट किये जो चमकीले सोने के बने थे और जिसमें चमकीले रत्न जड़े थे। उसने उन्हें एक वैजयन्ती माला, वरुण का छत्र तथा मन्दर पर्वत की चोटी भी दी।

अस्तौषीदथ विश्वेशं देवी देववरार्चितम् ।
प्राञ्जलिः प्रणता राजन्भक्तिप्रवणया धिया ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

अस्तौषीत्—स्तुति की; अथ—तब; विश्व—ब्रह्माण्ड के; ईशम्—स्वामी की; देवी—देवी; देव—देवतागण का; वर—श्रेष्ठ; अर्चितम्—पूजित; प्राञ्जलिः—अपने हाथ जोड़ कर; प्रणता—प्रणाम किया; राजन्—हे राजा (परीक्षित); भक्ति—भक्ति; प्रवणया—से पूरित; धिया—प्रवृत्ति से।

हे राजन्, उनको प्रणाम करके तथा उनके समक्ष हाथ जोड़े खड़ी वह देवी भक्ति-भाव से पूरित होकर ब्रह्माण्ड के उन स्वामी की स्तुति करने लगी जिनकी पूजा श्रेष्ठ देवतागण करते हैं।

भूमिरुवाच
नमस्ते देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधर ।
भक्तेच्छोपात्तरूपाय परमात्मन्नमोऽस्तु ते ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

भूमिः उवाच—भूमिदेवी ने कहा; नमः—नमस्कार; ते—आपको; देव-देव—देवताओं के स्वामी; ईश—हे ईश्वर; शङ्ख—शंख; चक्र—चक्र; गदा—गदा; धर—हे धारण करने वाले; भक्त—अपने भक्तों की; इच्छा—इच्छा से; उपात्त—धारण किये हुए; रूपाय—आपके रूपों को; परम-आत्मन्—हे परमात्मा; नमः—नमस्कार; अस्तु—होए; ते—आपको।

भूमिदेवी ने कहा : हे देवदेव, हे शंख, चक्र तथा गदा के धारणकर्ता, आपको नमस्कार है। हे परमात्मा, आप अपने भक्तों की इच्छाओं को पूरा करने के लिए विविध रूप धारण करते हैं। आपको नमस्कार है।

नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने ।
नमः पङ्कजनेत्राय नमस्तेपङ्कजाङ्घ्रये ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

नमः—सादर नमस्कार; पङ्कज-नाभाय—भगवान् को, जिनके उदर के बीच में कमल के फूल जैसा गड्ढा है; नमः—नमस्कार; पङ्कज-मालिने—जो सदैव कमल के फूलों की माला से सुसज्जित रहते हैं; नमः—नमस्कार; पङ्कज-नेत्राय—जिनकी चितवन कमल के फूल जैसी शीतलता प्रदान करने वाली है; नमः ते—आपको नमस्कार; पङ्कज-अङ्घ्रये—आपको, जिनके पैरों के तलवों पर कमल के फूल अंकित हैं।

हे प्रभु, आपको मेरा सादर नमस्कार है। आपके उदर में कमल के फूल जैसा गड्ढा अंकित है, आप सदैव कमल के फूल की मालाओं से सुसज्जित रहते हैं, आपकी चितवन कमल जैसी शीतल है और आपके चरणों में कमल अंकित हैं।

तात्पर्य : महारानी कुन्ती ने भी यही स्तुति की थी जो *श्रीमद्भागवत* के प्रथम स्कंध (१.८.२२) में पाई जाती है। इस श्लोक के शब्दार्थ तथा भावार्थ श्रील प्रभुपाद द्वारा की गई टीका से लिये गये हैं।

यह ध्यान देने की बात है कि यद्यपि कुन्ती द्वारा की गई स्तुति *श्रीमद्भागवत* में पहले आई है किन्तु यहाँ वर्णित घटना के अनेक वर्षों बाद उन्होंने यह स्तुति की थी।

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय विष्णवे ।
पुरुषायादिबीजाय पूर्णबोधाय ते नमः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; भगवते—भगवान् को; तुभ्यम्—आपको; वासुदेवाय—वासुदेव को, जो समस्त प्राणियों के आश्रय हैं; विष्णवे—सर्वव्यापक विष्णु को; पुरुषाय—आदि-पुरुष को; आदि—मूल, आदि; बीजाय—बीज को; पूर्ण—पूर्ण; बोधाय—ज्ञान को; ते—आपको; नमः—नमस्कार।

हे वासुदेव, हे विष्णु, हे आदि-पुरुष, हे आदि-बीज भगवान्, आपको सादर नमस्कार है। हे सर्वज्ञ, आपको नमस्कार है।

अजाय जनयित्रेऽस्य ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
परावरात्मन्भूतात्मन्परमात्मन्नमोऽस्तु ते ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

अजाय—अजन्मा को; जनयित्रे—जनक; अस्य—इस (ब्रह्माण्ड) के; ब्रह्मणे—ब्रह्म को; अनन्त—असीम; शक्तये—जिनकी शक्तियाँ; पर—श्रेष्ठ; अवर—तथा निकृष्ट; आत्मन्—हे आत्मा; भूत—भौतिक जगत का; आत्मन्—हे आत्मा; परम-आत्मन्—हे परमात्मा जो सर्वव्यापी हैं; नमः—नमस्कार; अस्तु—हो; ते—आपको।

अनन्त शक्तियों वाले, इस ब्रह्माण्ड के अजन्मा जनक ब्रह्म, आपको नमस्कार है। हे वर तथा अवर के आत्मा, हे सृजित तत्त्वों के आत्मा, हे सर्वव्यापक परमात्मा, आपको नमस्कार है।

त्वं वै सिसृक्षुरज उत्कटं प्रभो
तमो निरोधाय बिभर्ष्यसंवृतः ।
स्थानाय सत्त्वं जगतो जगत्पते
कालः प्रधानं पुरुषो भवान्परः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; वै—निस्सन्देह; सिसृक्षुः—सृजन करने की इच्छा वाले; अजः—अजन्मा; उत्कटम्—प्रमुख; प्रभो—हे प्रभु; तमः—तमो गुण; निरोधाय—संहार के लिए; बिभर्षि—धारण करते हो; असंवृतः—अनावृत; स्थानाय—पालन के लिए; सत्त्वम्—सतो गुण; जगतः—ब्रह्माण्ड के; जगत्-पते—हे ब्रह्माण्ड के स्वामी; कालः—काल, समय; प्रधानम्—भौतिक प्रकृति (अपने आदि-रूप में); पुरुषः—स्रष्टा (भौतिक प्रकृति के साथ अंतः क्रिया करने वाला); भवान्—आप; परः—पृथक्, परे।

हे अजन्मा प्रभु, सृजन की इच्छा करके आप वृद्धि करते हैं और तब रजो गुण धारण करते हैं। इसी तरह जब आप ब्रह्माण्ड का संहार करना चाहते हैं, तो तमो गुण और जब इसका पालन करना चाहते हैं, तो सतो गुण धारण करते हैं। तो भी आप इन गुणों से अनाच्छादित रहते हैं। हे जगत्पति, आप काल, प्रधान तथा पुरुष हैं फिर भी आप पृथक् एवं भिन्न रहते हैं।

तात्पर्य : तृतीय पंक्ति में आया *जगतः* शब्द सूचित करता है कि सृजन, पालन तथा संहार के कार्य ब्रह्माण्ड के संदर्भ में आये हैं। *उत्कम्* शब्द सूचित करता है कि जब कोई कार्य किया जा रहा होता है—चाहे वह ब्रह्माण्ड का सृजन हो या पालन या संहार—तो उस कार्य से सम्बद्ध विशेष भौतिक गुण प्रधान बन जाता है।

अहं पयो ज्योतिरथानिलो नभो
मात्राणि देवा मन इन्द्रियाणि ।
कर्ता महानित्यखिलं चराचरं
त्वय्यद्वितीये भगवनयं भ्रमः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

अहम्—मैं (पृथ्वी); पयः—जल; ज्योतिः—अग्नि; अथ—तथा; अनिलः—वायु; नभः—आकाश; मात्राणि—विभिन्न इन्द्रिय-विषय (पाँच स्थूल तत्त्वों के संगत); देवाः—देवतागण; मनः—मन; इन्द्रियाणि—इन्द्रियाँ; कर्ता—करने वाले, मिथ्या

अहंकार; महान्—समग्र भौतिक शक्ति (महत् तत्त्व); इति—इस प्रकार; अखिलम्—सम्पूर्ण; चर—चलायमान; अचरम्—जड़; त्वयि—तुम्हारे भीतर; अद्वितीये—अद्वितीय; भगवन्—हे प्रभु; अयम्—यह; भ्रमः—मोह।

यह भ्रम है कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, इन्द्रिय-विषय, देवता, मन, इन्द्रियाँ, मिथ्या अहंकार तथा महत् तत्त्व आपसे स्वतंत्र होकर विद्यमान हैं। वास्तव में वे सब आपके भीतर हैं क्योंकि हे प्रभु, आप अद्वितीय हैं।

तात्पर्य : भू-देवी अपनी स्तुति में दिव्य दर्शन की बारीकियों पर प्रकाश डालती हुई स्पष्ट करती हैं कि यद्यपि भगवान् अद्वितीय हैं और अपनी सृष्टि से पृथक् हैं किन्तु उनकी सृष्टि का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है और वह उन्हीं के भीतर टिकी हुई है। इस प्रकार भगवान् तथा उनकी सृष्टि एक ही समय अभिन्न तथा भिन्न हैं (अचिन्त्य भेदाभेद) जैसाकि श्री चैतन्य महाप्रभु ने ५०० वर्ष पूर्व बतलाया था।

यह कहना कि हर वस्तु, बिना किसी भेद के, ईश्वर है निरर्थक है क्योंकि कोई भी ईश्वर की तरह कर्म नहीं कर सकता। कुत्ते, जूते तथा मनुष्य जैसी वस्तुएँ न तो सर्वशक्तिमान या सर्वज्ञ होते हैं, न ही वे जगत की रचना कर सकते हैं। दूसरी ओर, जिस बात में सारी वस्तुएँ एक हैं उसमें अर्थ निहित है क्योंकि हर वस्तु उसी परम सत्य का अंश है। चैतन्य महाप्रभु ने सूर्य तथा सूर्य-किरणों का अत्यन्त सार्थक दृष्टान्त दिया है। सूर्य तथा उसकी धूप एक ही यथार्थ हैं क्योंकि सूर्य वह स्वर्गिक पिंड है, जो चमकता है। दूसरी ओर सूर्य-गोला (मण्डल) तथा सूर्य-किरणों में आसानी से अन्तर किया जा सकता है। इस प्रकार ईश्वर का अपनी सृष्टि से एकत्व तथा उससे भिन्नता वास्तविकता की अन्तिम और संतोषप्रद व्याख्या है। जो कुछ भी विद्यमान है, वह ईश्वर की शक्ति है फिर भी वे उच्च शक्तिरूप जीवों को मुक्त इच्छा प्रदान करते हैं जिससे वे उनके निर्णयों तथा कार्यों के नैतिक तथा आध्यात्मिक गुण के लिए उत्तरदायी हो सकें।

इस समग्र दिव्य विज्ञान का स्पष्ट एवं ग्राह्य विवेचन *श्रीमद्भागवत* में पाया जाता है।

तस्यात्मजोऽयं तव पादपङ्कजं
भीतः प्रपन्नार्तिहरोपसादितः ।
तत्पालयैनं कुरु हस्तपङ्कजं
शिरस्यमुष्याखिलकल्मषापहम् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसका (भौमासुर का); आत्म-जः—पुत्र; अयम्—यह; तव—तुम्हारे; पाद—पाँव; पङ्कजम्—कमल सदृश; भीतः—डरा हुआ; प्रपन्न—शरणागत; आर्ति—दुख, शोक; हर—हे हरने वाले; उपसादितः—पास आया है; तत्—इसलिए; पालय—रक्षा करें; एनम्—उसकी; कुरु—रखिये; हस्त-पङ्कजम्—अपना कर-कमल; शिरसि—सिर पर; अमुष्य—उसके; अखिल—सारे; कल्मष—पाप; अपहम्—समूल नष्ट करने वाले।

यह भौमासुर का पुत्र है। यह भयभीत है और आपके चरणकमलों के समीप आ रहा है क्योंकि आप उन सबों के कष्टों को हर लेते हैं, जो आपकी शरण में आते हैं। कृपया इसकी रक्षा कीजिये। आप इसके सिर पर अपना कर-कमल रखें जो समस्त पापों को दूर करने वाला है।

तात्पर्य : यह भूमिदेवी अपने पोते के लिए संरक्षण माँगती है, जो अभी हाल ही में घटी भयावह घटनाओं से बुरी तरह डरा हुआ है।

श्रीशुक उवाच
इति भूम्यर्थितो वाग्भिर्भगवान्भक्तिनम्रया ।
दत्त्वाभयं भौमगृहम्प्राविशत्सकलर्द्धिमत् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; भूमि—भूमिदेवी द्वारा; अर्थितः—प्रार्थना किये जाने पर; वाग्भिः—उन शब्दों से; भगवान्—भगवान्; भक्ति—भक्तिपूर्वक; नम्रया—विनीत; दत्त्वा—देकर; अभयम्—अभय; भौम-गृहम्—भौमासुर के घर में; प्राविशत्—प्रविष्ट हुए; सकल—समस्त; ऋद्धि—ऐश्वर्य से; मत्—युक्त।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस तरह विनीत भक्ति के शब्दों से भूमिदेवी द्वारा प्रार्थना किये जाने पर परमेश्वर ने उसके पोते को अभय प्रदान किया और तब भौमासुर के महल में प्रवेश किया जो सभी प्रकार के ऐश्वर्य से पूर्ण था।

तत्र राजन्यकन्यानां षट्सहस्राधिकायुतम् ।
भौमाहृतानां विक्रम्य राजभ्यो ददृशे हरिः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; राजन्य—राजवर्ग की; कन्यानाम्—कन्याओं का; षट्-सहस्र—छह हजार; अधिक—से अधिक; अयुतम्—दस हजार; भौम—भौम द्वारा; आहृतानाम्—छीन ली गईं; विक्रम्य—बल से; राजभ्यः—राजाओं से; ददृशे—देखा; हरिः—भगवान् कृष्ण ने।

वहाँ भगवान् कृष्ण ने सोलह हजार से अधिक राजकुमारियाँ देखीं, जिन्हें भौम ने विभिन्न राजाओं से बलपूर्वक छीन लिया था।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी पराशर मुनि का वह साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं जैसाकि *विष्णु पुराण* (५.२९.३१) में उद्धृत है, जिसके अनुसार भौम के महल में १६ १०० राजकुमारियाँ बन्दी थीं :

कन्यापुरे स कन्यानां षोडशातुल्यविक्रमः ।

शताधिकानि ददृशे सहस्राणि महामते॥

''हे विज्ञ! अद्वितीय पराक्रम वाले भगवान् ने राजकुमारियों के आवास-गृह से १६ १०० कुमारियाँ ढूँढ़ निकालीं।''

विष्णु पुराण (५.२९.९) का अन्य प्रासंगिक श्लोक इस प्रकार है—

देवसिद्धासुरादीनां नृपानां च जनार्दन।

हृत्वा हि सोऽसुरः कन्या रुरोध निजमन्दिरे॥

''हे जनार्दन! वह असुर (भौमासुर) देवताओं, सिद्धों, असुरों तथा राजाओं की अविवाहिता पुत्रियों का हरण करके ले गया और उन्हें अपने महल में बन्दी बना लिया।''

तम्प्रविष्टं स्त्रियो वीक्ष्य नरवर्यं विमोहिताः ।
मनसा वव्रिरेऽभीष्टं पतिं दैवोपसादितम् ॥ ३४॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; प्रविष्टम्—प्रवेश करते हुए; स्त्रियः—स्त्रियाँ; वीक्ष्य—देखकर; नर—मनुष्यों में; वर्यम्—श्रेष्ठ; विमोहिताः—मुग्ध; मनसा—अपने मनों में; वव्रिरे—चुना; अभीष्टम्—अभीष्ट; पतिम्—पति के रूप में; दैव—भाग्य से; उपसादितम्—लाई गई।

जब स्त्रियों ने पुरुषों में सर्वोत्तम पुरुष को प्रवेश करते देखा तो वे मोहित हो गईं। उन्होंने मन ही मन उन्हें, जो कि वहाँ भाग्यवश लाये गये थे, अपने अभीष्ट पति के रूप में स्वीकार कर लिया।

भूयात्पतिरयं मह्यं धाता तदनुमोदताम् ।
इति सर्वाः पृथक्कृष्णे भावेन हृदयं दधुः ॥ ३५॥

शब्दार्थ

भूयात्—बन सके; पतिः—पति; अयम्—वह; मह्यम्—मेरा; धाता—विधाता; तत्—वह; अनुमोदताम्—स्वीकृति प्रदान करें; इति—इस प्रकार; सर्वाः—वे सभी; पृथक्—अलग-अलग; कृष्णे—कृष्ण में; भावेन—भाव से; हृदयम्—अपने हृदयों में; दधुः—रख लिया।

हर राजकुमारी ने इस विचार से कि ''विधाता इस पुरुष को मेरा पति बनने का वर दें'' अपने हृदय को कृष्ण के विचार में लीन कर दिया।

ताः प्राहिणोद्द्वारवतीं सुमृष्टविरजोऽम्बराः ।
नरयानैर्महाकोशान्रथाश्वान्द्रविणं महात् ॥ ३६॥

शब्दार्थ

ताः—उनको; प्राहिणोत्—भेजा; द्वारवतीम्—द्वारका तक; सु-मृष्ट—स्वच्छ; विरजः—निष्कलंक; अम्बराः—वस्त्रों से; नर-यानैः—मनुष्यों के वाहनों (पालकियों) द्वारा; महा—विशाल; कोशान्—खजाने; रथ—रथ; अश्वान्—तथा घोड़े; द्रविणम्—धन-सम्पदा; महत्—विस्तृत।

भगवान् ने राजकुमारियों को स्वच्छ, निर्मल वस्त्रों से सजवाया और फिर उन्हें रथ, घोड़े तथा अन्य मूल्यवान वस्तुओं के विशाल कोषों समेत पालकियों में द्वारका भिजवा दिया।

ऐरावतकुलेभांश्च चतुर्दन्तांस्तरस्विनः ।
पाण्डुरांश्च चतुःषष्टिं प्रेरयामास केशवः ॥ ३७॥

शब्दार्थ

ऐरावत—इन्द्र के वाहन ऐरावत के; कुल—कुल से; इभान्—हाथियों को; च—भी; चतुः—चार; दन्तान्—दाँत वाले; तरस्विनः—तेज; पाण्डुरान्—श्वेत; च—तथा; चतुः-षष्टिम्—चौंसठ; प्रेरयाम् आस—भेज दिया; केशवः—भगवान् कृष्ण ने।

भगवान् कृष्ण ने ऐरावत प्रजाति के कुल के चौंसठ तेज, सफेद एवं चार दाँतों वाले हाथी भी भिजवा दिये।

गत्वा सुरेन्द्रभवनं दत्त्वादित्यै च कुण्डले ।
पूजितस्त्रिदशेन्द्रेण महेन्द्र्याण्या च सप्रियः ॥ ३८॥
चोदितो भार्ययोत्पाट्य पारीजातं गरुत्मति ।
आरोप्य सेन्द्रान्विबुधान्निर्जित्योपानयत्पुरम् ॥ ३९॥

शब्दार्थ

गत्वा—जाकर; सुर—देवताओं के; इन्द्र—राजा के; भवनम्—धाम में; दत्त्वा—देकर; अदित्यै—इन्द्र की माता अदिति को; च—तथा; कुण्डले—उसके कुंडल; पूजितः—पूजा किया गया; त्रिदश—तीस (मुख्य देवताओं); इन्द्रेण—प्रधान द्वारा; महा-इन्द्र्याण्या—इन्द्राणी द्वारा; च—तथा; स—सहित; प्रियः—प्रियतमा (सत्यभामा); चोदितः—प्रेरित; भार्यया—अपनी पत्नी द्वारा; उत्पाट्य—उखाड़ कर; पारिजातम्—पारिजात वृक्ष को; गरुत्मति—गरुड़ पर; आरोप्य—रख कर; स-इन्द्रान्—इन्द्र सहित; विबुधान्—देवताओं को; निर्जित्य—हरा कर; उपानयत्—ले गया; पुरम्—अपनी नगरी में।

भगवान् तब इन्द्र के घर गये और माता अदिति को उनके कुंडल प्रदान किये। वहाँ इन्द्र तथा उसकी पत्नी ने कृष्ण तथा उनकी प्रिया सत्यभामा की पूजा की। फिर सत्यभामा के अनुरोध पर भगवान् ने स्वर्गिक पारिजात वृक्ष उखाड़ लिया और उसे गरुड़ की पीठ पर रख दिया। इन्द्र तथा अन्य सारे देवताओं को परास्त करने के बाद कृष्ण उस पारिजात को अपनी राजधानी ले आये।

स्थापितः सत्यभामाया गृहोद्यानोपशोभनः ।
अन्वगुर्भ्रमराः स्वर्गात्तद्गन्धासवलम्पटाः ॥ ४०॥

शब्दार्थ

स्थापितः—स्थापित किया; सत्यभामायाः—सत्यभामा के; गृह—घर के; उद्यान—बाग को; उपशोभनः—सुन्दर बनाते हुए; अन्वगुः—पीछे लग गये; भ्रमराः—भौंरे; स्वर्गात्—स्वर्ग से; तत्—उसकी; गन्ध—सुगन्ध; आसव—तथा मीठे रस के; लम्पटाः—लालची।

एक बार रोप दिये जाने पर पारिजात वृक्ष ने रानी सत्यभामा के महल के बाग को मनोहर बना दिया। इस वृक्ष की सुगन्ध तथा मधुर रस के लालची भौंरे स्वर्ग से ही इसका पीछा करने लगे थे।

ययाच आनम्य किरीटकोटिभिः
पादौ स्पृशन्नच्युतमर्थसाधनम् ।
सिद्धार्थ एतेन विगृह्यते महा-
नहो सुराणां च तमो धिगाढ्यताम् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

ययाच—उसने (इन्द्र ने) विनती की; आनम्य—झुक कर; किरीट—मुकुट की; कोटिभिः—नोकों से; पादौ—उनके चरणों; स्पृशन्—स्पर्श करते हुए; अच्युतम्—भगवान् कृष्ण को; अर्थ—उसके (इन्द्र के) कार्य; साधनम्—पूरा करने के लिए; सिद्ध—पूरा हुआ; अर्थः—जिसका प्रयोजन; एतेन—उनके साथ; विगृह्यते—झगड़ता है; महान्—महात्मा; अहो—निस्सन्देह; सुराणाम्—देवताओं के; च—तथा; तमः—अंधकार; धिक्—धिक्कार है; आढ्यताम्—उनकी सम्पत्ति को।

भगवान् अच्युत को नमस्कार करने, उनके पैरों को अपने मुकुट की नोकों से स्पर्श करने तथा अपनी इच्छा पूरी करने के लिए भगवान् से याचना करने के बाद भी, उस महान् देवता ने अपना काम सधवाने के बाद भगवान् से झगड़ना चाहा। देवताओं में कैसा अज्ञान समाया है! धिक्कार है उनके ऐश्वर्य को।

तात्पर्य : यह सुविदित है कि भौतिक सम्पत्ति तथा अधिकार से उच्छृंखलता आती है, अतः प्रायः ऐश्वर्यमय जीवन नरक का मार्ग प्रशस्त करने वाला बनता है।

अथो मुहूर्त एकस्मिन्नानागारेषु ताः स्त्रियः ।
यथोपयेमे भगवान्तावद्रूपधरोऽव्ययः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

अथ उ—और तब; मुहूर्ते—शुभ समय पर; एकस्मिन्—उसी; नाना—अनेक; अगारेषु—भवनों में; ताः—वे; स्त्रियः—स्त्रियाँ; यथा—उचित रीति से; उपयेमे—विवाह किया; भगवान्—भगवान्; तावत्—उतने; रूप—रूप; धरः—धारण करते हुए; अव्ययः—अव्यय।

तब उन अव्यय महापुरुष ने प्रत्येक दुलहन (वधू) के लिए पृथक् रूप धारण करते हुए एकसाथ सारी राजकुमारियों से उनके अपने अपने भवनों में विवाह कर लिया।

तात्पर्य : जैसाकि श्रील श्रीधर गोस्वामी की व्याख्या है, यहाँ पर *यथा* शब्द सूचित करता है कि

हर विवाह उचित रीति से सम्पन्न हुआ। इसका अर्थ यह हुआ कि भगवान् के सारे सम्बन्धी, जिनमें उनकी माता देवकी भी सम्मिलित थीं, प्रत्येक महल में प्रकट हुए और हर विवाह में सम्मिलित हुए। चूँकि ये सारे विवाह एक ही समय सम्पन्न हुए, अत: यह घटना निश्चित रूप से भगवान् की अचिन्त्य शक्ति का प्राकट्य था।

जब भगवान् कृष्ण कोई कार्य करते हैं, तो वे उसे अपने ढंग से करते हैं। अत: यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि भगवान् एक ही समय १६ १०० राजमहलों में सम्पन्न हो रहे १६ १०० विवाहोत्सवों में प्रत्येक महल में अपने सारे सम्बन्धियों सहित प्रकट हुए। निस्सन्देह, भगवान् से ऐसी ही आशा की जाती है। आखिर, वे कोई सामान्य पुरुष तो हैं नहीं।

श्रील श्रीधर स्वामी यह भी कहते हैं कि इस विशेष अवसर पर भगवान् ने अपने हर महल में अपना आदि-रूप प्रकट किया। दूसरे शब्दों में, विवाह-प्रतिज्ञा में भाग लेने के लिए उन्होंने सारे महलों में एक से रूप (*प्रकाश*) प्रकट किये।

गृहेषु तासामनपाय्यतर्ककृ-
न्निरस्तसाम्यातिशयेष्ववस्थित: ।
रेमे रमाभिर्निजकामसम्प्लुतो
यथेतरो गार्हकमेधिकांश्चरन् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

गृहेषु—घरों में; तासाम्—उनके; अनपायी—कभी न छोड़ते हुए; अतर्क—अचिन्त्य; कृत्—किये गये कार्य; निरस्त—निराकरण किये गये; साम्य—समानता; अतिशयेषु—तथा श्रेष्ठता; अवस्थित:—रहते हुए; रेमे—रमण किया; रमाभि:—मनोहर स्त्रियों के साथ; निज—अपने; काम—आनन्द में; सम्प्लुत:—लीन; यथा—जिस प्रकार; इतर:—कोई अन्य व्यक्ति; गार्हक-मेधिकान्—गृहस्थ जीवन के कार्य; चरन्—सम्पन्न करता हुआ।

अचिन्त्य कृत्य करने वाले भगवान् निरन्तर अपनी प्रत्येक रानी के महल में रहने लगे जो अन्य किसी आवास की तुलना में अद्वितीय थे। वहाँ पर उन्होंने अपनी मनोहर पत्नियों के साथ रमण किया यद्यपि वे अपने आपमें पूर्ण तुष्ट रहते हैं और सामान्य पति की तरह अपने गृहस्थ कार्य सम्पन्न किये।

तात्पर्य : यहाँ पर *अतर्क-कृत्* शब्द महत्त्वपूर्ण है। *अतर्क* का अर्थ है "तर्क से परे।" भगवान् ऐसा कार्य कर सकते हैं (*कृत्*) जो संसारी तर्क से परे है, अत: अचिन्त्य है। किन्तु तो भी जो लोग उनके शरणागत हैं, वे कुछ हद तक भगवान् के कार्यों को सराह सकते हैं और समझ सकते हैं। *भक्ति*

का—भगवान् के प्रति प्रेमाभक्ति का—यही रहस्य है।

श्रील श्रीधर स्वामी की टीका है कि भगवान् सदैव घर पर रहते थे, सिवाय तब जब उन्हें सामान्य गृहस्थी के कार्यों से बाहर जाना पड़ता था। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि चूँकि वैकुण्ठ में नारायण केवल लक्ष्मी के साथ ही रमण करते हैं जबकि द्वारका में कृष्ण हजारों रानियों के साथ रमण करते हैं अत: द्वारका को वैकुण्ठ से श्रेष्ठ मानना चाहिए। इस प्रसंग में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने *स्कन्द पुराण* से निम्नलिखित उद्धरण दिये हैं—

षोडशैव सहस्राणि गोप्यस्तत्र समागत:।

हंस एव मत: कृष्ण: परमात्मा जनार्दन:॥

तस्यैता: शक्तयो देवि षोडशैव प्रकीर्तिता:।

चन्द्ररूपी मत: कृष्ण: कलारूपास्तु ता: स्मृता:॥

सम्पूर्णमण्डला तासां मालिनी षोडशी कला।

षोडशैव कला यासु गोपीरूपा वरांगने॥

एकैकशस्ता: सम्भिन्ना: सहस्रेण पृथक् पृथक्।

''उस स्थान पर सोलह हजार गोपियाँ कृष्ण के साथ एकत्र हुईं जिन्हें परमात्मा या समस्त जीवों का आश्रय कहा जाता है। हे देवी! ये गोपियाँ उनकी विख्यात सोलह शक्तियाँ हैं। कृष्ण चन्द्रमा के समान हैं, गोपियाँ उसकी कलाएँ हैं और गोपियों का सारा वृन्द चन्द्रमा की सोलह कलाओं की पूरी सरणि के तुल्य है। हे वरांगना! गोपियों के इन सोलह विभागों में से हर विभाग एक हजार अंशों में विभाजित है।''

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने *पद्म पुराण* के *कार्तिक-माहात्म्य* से भी उद्धरण दिया है—*कैशोरे गोपकन्यास्ता यौवने राजकन्यका:*—वे जो अपनी किशोरावस्था में ग्वालों की पुत्रियाँ थीं वे ही अपनी युवावस्था में राजकुमारियाँ बन गईं। आचार्य ने आगे कहा है, ''जिस तरह द्वारका के ईश श्री वृन्दावन के परम पूर्ण भगवान् के अंश हैं उसी तरह उनकी पटरानियाँ उनकी परम पूर्ण ह्लादिनी शक्तियों—गोपियों—की पूर्ण अंश हैं।''

इत्थं रमापतिमवाप्य पतिं स्त्रियस्ता
ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयाम् ।
भेजुर्मुदाविरतमेधितयानुराग-
हासावलोकनवसङ्गमजल्पलज्जाः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इस प्रकार से; रमा-पतिम्—लक्ष्मी-पति को; अवाप्य—प्राप्त करके; पतिम्—अपने पति रूप में; स्त्रियः—स्त्रियाँ; ताः—वे; ब्रह्मा-आदयः—ब्रह्मा तथा अन्य देवता; अपि—भी; न विदुः—नहीं जानते; पदवीम्—प्राप्त करने की विधियों को; यदीयाम्—जिसको; भेजुः—भाग लिया; मुदा—प्रसन्नतापूर्वक; अविरतम्—निरन्तर; एधितया—वर्धित; अनुराग—प्रेम का आकर्षण; हास—हँसी; अवलोक—चितवन; नव—नवीन; सङ्गम—साथ; जल्प—हास-परिहास; लज्जाः—तथा शर्म।

इस तरह उन स्त्रियों ने लक्ष्मी-पति को अपने पति के रूप में प्राप्त किया यद्यपि ब्रह्मा जैसे बड़े से बड़े देवता भी उन तक पहुँचने की विधि नहीं जानते। वे उनके प्रति निरन्तर वृद्धिमान अनुराग का अनुभव करतीं, उनसे हँसीयुक्त चितवन का आदान-प्रदान करतीं और हास-परिहास तथा स्त्रियोन्वित लज्जा से पूर्ण नित नवीन घनिष्ठता का आदान-प्रदान करतीं।

प्रत्युद्गमासनवरार्हणपदशौच-
ताम्बूलविश्रमणवीजनगन्धमाल्यैः ।
केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यैः
दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

प्रत्युद्गम—पास जाकर; आसन—बैठने का स्थान; वर—उच्च कोटि का; अर्हण—पूजा; पाद—उनके पाँव; शौच—प्रक्षालन; ताम्बूल—पान; विश्रमण—(उनके पाँव दबाकर) विश्राम करने में सहायता करतीं; वीजन—पंखा झलतीं; गन्ध—सुगन्धित वस्तुएँ (भेंट करतीं); माल्यैः—तथा फूल-मालाओं से; केश—बाल; प्रसार—सँवारती; शयन—बिस्तर पर लेटती; स्नपन—नहलातीं; उपहार्यैः—तथा भेंटें देकर; दासी—सेविकाएँ; शताः—सैकड़ों; अपि—यद्यपि; विभोः—शक्तिशाली भगवान् के लिए; विदधुः स्म—सम्पन्न किया; दास्यम्—सेवा।

यद्यपि भगवान् की प्रत्येक रानी के पास सैकड़ों दासियाँ थीं तो भी वे भगवान् के पास विनयपूर्वक जाकर, उन्हें आसन प्रदान करके, उत्तम सामग्री से उनकी पूजा करके, उनके पाँवों का प्रक्षालन करके तथा मालिश करके, उन्हें खाने के लिए पान देकर, उन्हें पंखा झलकर, उन्हें सुगन्धित चन्दन-लेप से लेपित करके, फूलों की माला से सजाकर, उनके बाल सँवारकर, उनका बिस्तर ठीक करके, उन्हें नहलाकर तथा उन्हें विविध उपहार देकर स्वयं उनकी सेवा करना पसन्द करतीं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''नरकासुर का वध'' नामक उनसठवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।